UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182421

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81·6/SGIE Accession No. G.H·2259

Author सिंह, सत्यव्रत।

Title एक पुल अलग अलग। 1957

This book should be returned on or before the date last marked below.

एक एक अलग अलग

सत्यव्रत सिंह

कॉपी राइट १९५७,
सत्यव्रत सिंह

प्रकाशन व्यवस्थापक
प्रभाकर द्विवेदी

प्रकाशक
सत्यनारायण सिंह
गुथिया, कैसरगंज
बहराइच (उ० प्र०)

मुद्रक
रमाकान्त मिश्र
लखनऊ प्रिंटिंग हाउस
गूँगे नवाब का पार्क
अमीनाबाद, लखनऊ

प्रथम संस्करण
एक हजार प्रति

मूल्य
एक रुपया

एक एक अलग अलग

पद्य रचनाएँ

मङ्गल-कामना

शोभा सुख पाने दो,
रात बीत जाने दो।
गीत जो अधूरा है,
पूरा कर गाने दो।
भाये जो नहीं हमें,
उनको भी भाने दो।
लायें प्रेमोपहार,
रोको मत, लाने दो।
आये हैं अपने घर,
अन्दर आ जाने दो।
रूठ गये, मानें वे,
मानें तो जाने दो।

२५ मई, '५६ ई०]

नित्य-नवल उल्लास

नित्य नवल उल्लास,
भर देता प्राची को जैसे विभु का विभा-विकास।
पुण्य-प्रताप प्रशस्त करे पथ, पल-पल बढ़े प्रकाश;
गुणाभाव की गुफा, गुणों से हो तमिस्र का नाश।
सुख-समीर शीतल-स्पर्शकर; सुरभित हो प्रति श्वास;
नेत्र बनें नीतिज्ञ, रदों को घेरे हिम-सा हास।

१० जून, '५४ ई०]

हास में हृदयोल्लास नहीं

हास में हृदयोल्लास नहीं,
जहाँ है तृष्णा, त्रास वहीं।
दोष देख कर हँसने वाले,
हम कितने सर्पों को पाले!
डसते वे, हा, हमें बचाने वाला पास नहीं।
जिससे सुरभित हो जीवन-वन,
विफल न हों पल, हो निर्मल मन,
वैसी शक्ति-प्रदा एक भी, है क्या श्वास नहीं?
तरस-तरस कर जीते हैं जन,
बरस-बरस कर रीते हैं घन,
स्वामी हैं सब निज तन-मन के, पर क्या दास नहीं?

१० दिसम्बर, '२१ ई०]

मैं तुम्हें हर्गिज न भाया

मैं तुम्हें हर्गिज न भाया,
भटकता ही रहा, धोखा बहुत खाया।
तुम सतत, करुणेश! करुणा-वारि बरसे,
किन्तु मेरे देह-द्रुम के पात अब तक नहीं हरसे,
सुमनता का सौख्य मैंने नहीं पाया।
कौन जाने कब तुम्हें मैं पा सकूँगा,
दैन्य-दुख से दूर आगे जा सकूँगा,
जानते होगे, तभी तो है उठाया।

६ दिसम्बर, '५५ ई०]

किधर को चल रहा ?

किधर को चल रहा भ्रम से भरा मैं ?
नहीं प्रिय हो सका है सुपथ अब भी,
कुपथ पर कष्ट पाया, हूँ डरा मैं।
न जाने कौन-सा है रोग ऐसा,
बहुत सींचा, नहीं होता हरा मैं।
विचारों की शरत्-शोभा,
नहीं रहती यहाँ निशिदिन,
नहीं है पद्म जिसमें, हूँ वही पङ्किल धरा मैं।

१६ दिसम्बर, '५१ ई०]

बल और प्रण

नहीं बनूँगा मैं छोटे गड्ढे का पानी,
बन सकता हूँ लघु-तरङ्ग सागर के जल में!
बुझना है तो पहले ज्वाला-मुख बन करके,
भर जाऊँगा हलचल-सा जल-थल-अम्बर में!
असामान्य-गुण धारण करके भी साधारण
बनना हो स्वीकार्य भले ही किसी दशा में,
पर विशेषता-हीन सदा ही रहना है तो,
किस अभाव की पूर्ति के लिये, हा, हम जनमे?

२८ जुलाई, '५२ ई०]

नीम की पत्तियाँ पीली

नीम की पत्तियाँ पीली,
है बहुत जाड़ा, नहीं धरती छबीली।
चहचहाते विहग, होता प्रात,
ओस-कणवाला बिछौना छोड़ जाती रात।
कृषक का तन सह रहा है शैत्य का आघात,
आग के ढिग बैठ करके गरम करता गात।
लपट-सी लिपटी गगन से
हो न सकती उषा गीली।

६ दिसम्बर, '५५ ई०]

ज्योति-विजय

फैल रहा विहगों का सुख-स्वर,
आया सौरभ छोड़ मुकुल-घर।
पलक-पँखुरियाँ खुलीं हमारी,
प्रमुख हुई प्राची-दिक् प्यारी।
उषा गगन के छोर रँग गयी,
भू पर हर्ष-हिलोर जग गयी।
मेड़ों पर चलने का अवसर,
जहाँ सिहरते हैं तृण सुन्दर।
पुरइन बिछीं, मृणाल पद्म-मुख,
बढ़ा रहे हैं कुमुद दृष्टि-सुख,
नाव लहर को बढ़ा चल रही,
सर में नभ की प्रीति ढल गयी।
कहता रवि-प्रतिबिम्ब मनोहर—
जीत ज्योति की हुई तिमिर पर।

७ मार्च, '२५ ई०]

कमल-वन में भ्रमर को भेज देना !

कमल-वन में भ्रमर को भेज देना !
बनाये जा रहे हैं, हा ! विवश मन-मुकुल-माला ,
बहुत दिन हो गये आया नहीं रस-लोभ-वाला !
अविकसित को करे विकसित ,
उसे उर-सेज देना !
यहाँ पर हैं अयुत, शत और दश शत दल विमल .
उन्हीं में एक व्याकुल और साधारण कमल।
अमलता मलिन को देकर ,
तिमिर-हर ! तेज देना !

१८ सितम्बर, '२५ ई०]

शत-संवत्सर-शतदल-जीवन

शत-संवत्सर-शतदल-जीवन,
परमेश्वर! कर दो निर्मल मन।
ज्ञान-सूर्य के सकरुण-शुभ-कर
करते हों मण्डित मधुमय तन।
विमल विचार-वीचियाँ, जगसर,
बहता हो सुख-श्वास-सा पवन।
आयें नित्य मधुप-विद्वज्जन,
हो अनवरत गुणों का गुञ्जन।

१० दिसम्बर, '५५ ई०]

पथ की रेणु पुनीत हो गयी

पथ की रेणु पुनीत हो गयी,
आया वह जन,
जिसने जन-मन,
खिला दिया ज्यों-
कमलों का वन,
कीर्त्ति-सुरभि से जगत्प्राण भर
सुधि सुखमय सङ्गीत हो गयी।

३ जून, '५४ ई०]

रे भृङ्ग ! बोल

रे भृङ्ग ! बोल;
चल,
छोड़ अरे !
यह वेणु-रन्ध्र;
उन्मुक्ति चाहता,—
मुकुल-गन्ध !
गुञ्जन में नित्य निमीलित-से—
मधुमयि-पंखुरि के पलक खोल !

सुनसान पलक का स्वप्न-लोक,
सत्सवन-सुधा का अश्रु-ओक !
ढुलका न, अरे ये तुहिन-विन्दु,
चल, चपल ! बैठ मत, पङ्ख खोल !

१६ मार्च, '२० ई०]

निम्ब-डाल

विहसी रे, निम्ब-डाल !
आया—मधु का सुकाल।
मीलित द्रुम-अङ्गों से,
श्वेत-शिति-रङ्गों से—
—पत्रों के अन्तराल !
मन्द-कटु-गन्ध'—
खोले !
मारुत के बन्ध' तोले !
वायस-पिक-वंश-पाल !

जून, '५० ई०]

मन्दार-कुसुम पर

मन्दार-कुसुम पर मँडराता है भौंरा।
उसने उपवन की शोभा नहीं निहारी,
बन सकी न कोई कलिका उसकी प्यारी,
अति मन्द भाग्य या सबसे बढ़ कर उसका,
मन्दार-कुसुम पर मँडराता जो भौंरा।

बैठेगा उस पर और चखेगा रस जब,
हर्षित होगा या खिन्न, न जाने क्या, तब?
उत्तर दे इसका कौन, प्रश्न यह किसका?
मन्दार-कुसुम पर मँडराता है भौंरा।

१२ नवम्बर, '२३ ई०]

काक का कटोहला

काक का कटोहला।
हारे मार ढेले सब,
छटके कुछ, अटके कुछ,
इच्छुक ने हाथ मला।
देखा जो, दुर्बल ने,
भूला वह दो पल में;
कैसा यह भाग भला!
बल से कुछ संस्फुरण,
तो भी शुभ संचरण,
हो कर निराश चला।
चट से 'पट्,' भू पर था,
उड़ा काक; टेसू-सा—
देखा जब, जी जला।

२२ जून, '५० ई०]

सिमटे मुक्ति-मरण

उतर रहा,—
सर का चञ्चल-जल;
नीरस हुए,—
नीरजों के दल;
लुटा, आज,—
—मीनों का सम्बल।
फैल गये,—
सूखे' तट-अञ्चल,
शेष रहा,—
बन्धन का दलदल,
सिमटे,—
मुक्ति-मरण के समतल।

१२ जून, '५० ई०]

इन्हें श्याम घन श्याम न समझो !

इन्हें श्याम घन श्याम न समझो !
पय-वर्षक ये भी हैं सुन्दर
जीवन-धर, पवि-धाम न समझो !
मधु को मार मधुप-तन पाया,
सुधि-सौरभ ने इन्हें बुलाया,
किसलय-कुसुम दिये, सुख-छाया,
क्यों फिर माधव नाम न समझो !
कितनी गर्मी फिर यह नर्मी,
शीतलता सागर तक भरमी,
वायुयान पर सुखासीन कर
लाये, यह कम काम न समझो !

१२ अक्तूबर, '५५ ई०]

चली आज पुरवाई

चली आज पुरवाई,
बादल की सेना भी इसके साथ-साथ ही धाई।
पछुवा ने पुरवाई में भर सुख-शीतलता पाई,
अब भी तपन तप रहा ऊपर, किरण भूमि पर आई।
किन्तु कहाँ वह ताप खो गया, जगमग ज्योति जगाई,
दीरघ-दाघ-निदाघ-अन्त की सुखद सूचना लाई।
तरु-पत्रों को हिला टहनियों पर कैसे लहराई!
मानों वर्षा-ऋतु धरती पर पुरवाई बन छाई।

३ मई, '५४ ई०]

इन गाँवों के चारों ओर

इन गाँवों के चारों ओर
घूम-घूम कर खेतों-बागों में चरते हैं ढोर।
भर जाता तालाब लबालब वर्षा में जो,
उमड़-उमड़ कर आ सकता है मेरे घर तक,
कटे फटे उसके जल-पट के दूर न दो-दो छोर।
बिरवाही मारी जाती थी,
वर्षा थोड़ी हुई हलों का चलना भी प्रारम्भ।
सूनी हैं डालें आमों की,
दैन्य मात्र में प्रकट हुआ क्यों कहीं दैव का दम्भ!
नग्न धरा पर दिखलायी दे जाते हैं ये,
प्रसन्नता-रव से पूरित श्रुति-पुट कर देंगे,
कृष्ण घनों को देख-देख कर मद से माते मोर।

८ जून, '५४ ई०]

वर्षा

जलधर बने पयोधर,
लज्जावरण त्याग कर मानो भरने लगे सुवन-सर,
तभी करमुआ कर-सा कोमल हिलता सुख से विह्वल,
मातृ-मधुरता पर हो लट्टू होगी कमला निश्चल,
शीतलता आ रही भूमि पर छन-छन प्रहर-प्रहर पर,
क्षेत्र-क्षेत्र में विस्तृत, गृह में, हरीतिमा अति सुन्दर।

६ अगस्त, '५४ ई०]

क्लेश

सुधि आयी, सन्देश न आया,
वर ने विधि का वेश न पाया।
गगन भरा, पर शून्य हृदय में—
धरा-तृप्ति का लेश न आया।
शरत्सुधा बरसी वसुधा पर,
किन्तु प्रथम-सा देश न पाया।
प्रेम-पूर्ण था गीत मनोहर,
फिर भी वह आवेश न आया।
सदा कामना रही अधूरी,
पर अब तक यों क्लेश न पाया।

१६ नवम्बर, '५५ ई०]

अरी वासने !

अरी वासने, तेरी पीड़ा !
हाय, मुझे बेहाल कर दिया,
जो पाया तत्काल हर लिया,
हा, कितने कष्टों के कोड़े—
लगे, हन्त, कैसी यह क्रीड़ा।

अब तो दान दया का कर तू,
मुझ भिक्षुक की झोली भर तू,
छोड़, शान्ति से रहने दे री,
मत दुख देने घड़ी-घड़ी आ।

दीन-दरिद्र जान कर मुझको
आज उचित करना वह तुझको
जिससे हो सम्पन्न जगत में—
पाऊँ मान, न होवे व्रीड़ा।

६ जून, '५४ ई०]

सुख-साधन

कभी मृत्यु को मत भूलो,
सुख से ऐसे मत फूलो।
याद रहे, जीवन के साथ—
मृत्यु दिखाती नित सौ हाथ।
बँधा योग के संग वियोग,
करो त्यागपूर्वक ही भोग।
बाँधो मत पुल आशा के,
टूट न जायँ निराशा से।
कर्म करो सुख पाओगे,
निज-पर-सबको भाओगे।
अच्छे की अच्छाई है,
बुरा, बुराई आई है।
अच्छा ही सबको प्यारा,
सकल जनों का दृग-तारा!
इसीलिए अच्छा होना,
और बुराई को खोना,
धर्म हमारा पावन है,
सभी सुखों का साधन है!
जगत् उसी से हरा हुआ,
ऋद्धि-सिद्धि से भरा हुआ!

रहा नहीं कोई सन्ताप,
दलित हुआ दानव का दाप!
सौख्य-समीर बह रहा है,
यश की कथा कह रहा है।
किन्तु अँधेरी रातें ये,
याद दिलातीं बातें वे—
दुख के दिन भी मत भूलो,
सुख में ऐसे मत फूलो।

१७ जून, '५४ ई०]

दो-दो बार छिटकती लाली

दो-दो बार छिटकती लाली,
एक विलीन दिवस में होती,
लाती अन्य निशा तम वाली।
सन्धि-काल दोनों अति सुन्दर,
हुईं ग्रन्थियाँ सुषमाशाली।
ज्योति-ज्योत्स्ना में मिल छाया
बिछी, बनी जग-जीवन-जाली।
अमा-पूर्णिमा सूर्य-चन्द्र से
सृष्टि प्रलय तक जातीं पाली।
चुने कुसुम, कल उनकी बारी
रहीं आज जो कलियाँ खाली।
उषा और सन्ध्या कहती हैं—
नित्य निकट आता है माली।

८ जून, '५४ ई०]

सान्ध्य-शोभा

स्वर्णिम और सजल सन्ध्या है, स्वर्णिम और सजल।

ग्रीष्मातप से तपी भूमि थी, तपा हुआ अम्बर था,
मलिन वारि ही बचा जहाँ पर रहा ग्राम का सर था,
दुःसह लू चल रही दिवस में, आम्रोद्यान न भाता,
निर्मल नभ का भूमि सरसता से टूटा था नाता।

पत्र हरित औ' अमल इक्षु के, पत्र हरित औ' अमल।

दिनमणि उतर चला पश्चिम को, चढ़ी धूलि की धारा,
क्षिति से नभ तक फैल गयी अब, दिखता नहीं किनारा,
तरुओं के पत्रों को विचलित प्रतिक्षण किया पवन ने,
गरज-गरज कर रोका घन ने, दिया स्नेह-धन क्षण में।

अभिसिञ्चित दल सकल द्रुमों के, अभिसिञ्चित दल सकल।

मन्द-मन्दतर हुआ प्रभञ्जन, बन्द हुई वर्षा फिर,
निशागमन के साथ राग का रश्मि-वर्ण आया घिर,
मेघों के पट हटा-हटा कर देख रहे ये तारे,
सान्ध्य और नीलाभ गगन पर लगते हैं अति प्यारे।

रस ही है तप का फल निश्चय; रस ही है तप का फल।

२६ मई, '५४ ई०]

रात्रि ने आकर

रात्रि ने आकर सुहाना कर दिया है,
प्रीति से मानो पवन को भर दिया है।
क्यों दृगों में छा गयी सुषमा गगन की,
धरणि को किसने सुधा का सर किया है?
हरित दूर्वादल पगों को चूमते हैं,
चन्द्रिका दे दी; तिमिर को हर लिया है।
दूर करके भी उन्हें कितनी चमक दी,
तारकों को तारकों का वर किया है।
नीलिमा में अरुणिमा को जन्म देकर—
श्वेतता-स्मिति को अधर पर धर लिया है।

१ सितम्बर, '५४ ई०]

दिखाओ सपने

लो अब मुझे दिखाओ सपने।

विविध दृश्य देखे, दृग हारे,
अब पलकों से मुँदते तारे,

श्रम-श्लथ चरण लगे हैं कँपने।

चित्र न वे साकार हो सके,
न तो गा सके औ' न रो सके,

सच समझूँ जो झूठे अपने।

२५ जुलाई, '२५ ई०]

क्या बात भाये ?

कहो इस देश की क्या बात भाये ?
जहाँ प्रतिपल न प्रभु की याद आये।
यहाँ वे लोग हँसते-खेलते हैं,
जिन्हें है मानना बस धूल में ही मूल अपना।
अरे, फल क्या मिलेगा खाक उनको,
भुलाया है जिन्होंने शूल में ही फूल अपना!
न अन्धे से प्रभा की बात पूछो,
अगर पूछो, भला वह क्या बताये ?

१६ दिसम्बर, '२५ ई०]

शुक्ल-तृतीयेन्दु के प्रति

नील-विहायस् में पश्चिम की ओर,
सन्ध्या के उपरान्त,
श्वेत-वर्ण-मय कान्त,
उन तरुओं के ऊपर, जिनके शेष रहे आकार,
भूमि-भाग पर, जिस पर केवल गन्नों का ही प्यार,
वाम-पार्श्व में स्थित जो
अत्युज्ज्वल तारक दो
सुषमा-वर्धन बने, सुरँग में होगा कौन विभोर?
मिटा न जग का ध्वान्त,
हुआ न शोभाक्रान्त।
कृष्ण-पक्ष के आघातों का उतरा अभी न भार,
थोड़े ही व्रण भरे, देह का है अधिकांश असार,
किन्तु प्रसन्न-वदन हो,
निर्मल कलाकलन हो।
रेखा-सूचित-प्रभा-हीन-तनु, विभु-आभा-घन-मोर!

४ जून, '२४ ई०]

धरणि पीकर सौरभ का सोम

ठहरकर झूमझूमकर चूम—
द्रुमालिङ्गन करता शुचिवात,
थिरक उठते पादप के पत्र,
कभी धीरे से सुमन-प्रपात।
महक मञ्जुल वल्लरि को छोड़—
छिटक कर करती सुरभित व्योम,
मधुर-निद्रा में मग्न, प्रशान्त—
धरणि पीकर सौरभ का सोम।

आँगन में बेला—

बेला के दल,
हरित-अङ्क में लिये हुए हैं—
शुभ्र कुसुम, कल कुड्मल।
पीत-वर्ण-समलंकृत अलि की श्यामलता शुभ
इन्हें रिझाने आयी जब विहगों के स्वर में—
जन प्रबुद्ध, किरणों में पूरित
हुए सब ककुभ।

अरे बावरे भृङ्ग!
चन्द्रिका की चादर में
ढका हुआ था विश्व,
जग रहे थे दृग-तारे,
फैल गये थे पिघल-पिघल कर
स्नेह-सुधा-हिम-शृङ्ग,
तब किसकी मन-मोहकता में फँसे हुए थे?
वेणु-रन्ध्र में सोये थे या
प्रीति-पाश से कसे हुए थे?
सुधि थी तुमको नहीं,

खिलते होंगे हृदयाङ्गण में
प्रेम-पुष्प वे कहीं,
जिनको चाह तुम्हारी होगी,
जाओगे यदि नहीं
भूल तो भारी होगी।

१४ जून '२४ ई०]

ये आकर्षण और विकर्षण

आशा है, फिर-फिर आयेंगे,
किन्तु वर्ष नव-नव अनुभव की सुखद भेंट भी ला पायेंगे ?

प्रति वर्षा लाती वारिद-दल, सुनते भेक मयूरों के स्वर,
दिन दूने औ' रात चौगुने बढ़ते-से लगते दूर्वादल।
भरते हुए सरोवर सुन्दर, जलज-जनक भी कहलायेंगे ?

पूर्ण चन्द्र, चन्द्रिका मनोहर, अचपल हुआ स्वच्छ सुख का जल,
गये बीतते शरद्दिवस शुभ, रहे सतत शीतल के शीतल।
मनोभूमि के भाव-शस्य पर, ओले तो न गिरा जायेंगे ?

मधुमासाग्र ग्रीष्म-ऋतु आती, कोमल नवल सृष्टि हो जाती,
धूलि-धूसरित अग-जग को कर, मादकता हरती झुलसाती।
ये आकर्षण और विकर्षण, किसको किस तक पहुँचायेंगे ?

२२ सितम्बर, '५४ ई०]

मेघों का स्मरण—

(१)

पवन के पालने पर श्याम घन हँसने लगे हैं,
उन्हीं के अलक अँधियारी बने डसने लगे हैं!
सहज सौन्दर्य-सुख-जल बरसता है,
कहीं क्या हृदय कोई तरसता है?
लहर आयी धरा के हरित-तनु में,
दिखाया केतु जय का इन्द्र-धनु ने!

(२)

सजीले उन दिनों की याद आती है,
सुना जो गीत वर्षा का, उसे हर ऋतु सुनाती है।
शरत् की चाँदनी में भूमि की शोभा दिखायी दी,
इसी को छोड़ जाने को विमल बरसात आयी थी।
चराचर मोहनेवाले न जब तक मेघ आयेंगे,
सँदेशा नवल वर्षा का न जब तक फिर सुनायेंगे,
रहेगी शुष्क शीतलता, सरसता रूठ जायेगी!
नवलता पुष्प-धन पादप तनों पर क्या लुटायेगी!
बिना जल-धार वह मधु मान कितने दिन रहेगा?
विरस उच्छ्वास यौवन हृदय कितने दिन सहेगा?

पहन कर झाँझ पत्तों की बवण्डर नाचती होगी,
लपट की लहर के नभ-लेख दुपहर बाँचती होगी!
तवे-सी तप्त धरती पर न ठहरेंगे चरण क्षण भर,
दरारों से भरे होंगे सभी सूखे सरोवर!

(३)

उमड़ कर फिर गगन में भूमि को घन घेर लेंगे,
विनत हो क्यों रसा की ओर से मुँह फेर लेंगे!

४ मार्च, '५५ ई०]

एक-एक, अलग-अलग

बिना योग्यता के तो आशा व्यर्थ है,
किन्तु निराशा का भी कोई अर्थ है?
आशा है, तो आशा होगी पूर्ण भी,
किन्तु बिना इसके है मनुज अपूर्ण ही।

सहने दे, रे! सहने दे जो सहना है,
कहने दे, रे! कहने दे जो कहना है,
सब समाज चल रहा मात्र समझौतों से,
रहने दे, रे! रहने दे, यदि रहना है।

मैं तेरी हर बात ध्यान से सुनता हूँ,
मर्जी के माफिक है जो, वह चुनता हूँ,
नहीं कहीं इन्कार पहनने से करना,
यह कपड़ा तेरे सूतों से बुनता हूँ।

एक पन्थ के पथिक साथ चल पाते हैं,
मिलते हैं जो गले, साथ वे गाते हैं,
गुण-स्वभाव की समता ही उत्तम नाता,
और निभाये जाते झूठे नाते हैं।

इस मैली मिट्टी के तन का क्या वर्णन,
नाशवान् ही है इसका शोभा का धन,
बात यही मरणोपरान्त रहने वाली,
लोग कहेंगे, 'सज्जन था' या 'था दुर्जन'।

मित्र मित्रता का दावा झूठा समझें,
शत्रु शत्रुता का दावा झूठा समझें,
जीवन पर अधिकार मरण का होगा ही,
—कहो किस तरह यह दावा झूठा समझें!

नाश करोगे क्यों सारे संसार का?
नाश करोगे क्यों परिचय औ' प्यार का?
अरे नाश की प्रबलेच्छा रखने वाले!
नाश न हो क्यों तेरे इस कुविचार का?

दया नहीं करता हूँ, डरता हूँ,
दूसरे की पीड़ा से द्रवित नहीं होता हूँ,
किन्तु वैसे कष्ट की ही कल्पना डराती है।

कमलों के दल मुरझाते हैं, नभ में नव बादल छाते हैं,
रोना-धोना लगा रहेगा, गाने वाले ही गाते हैं।

भूधर ढह गये, भूमिधर ऐंठा है,
उर का अधिवासी भूखा ही बैठा है।

मात्राएँ कम हों या ज्यादा, बराबर नहीं होंगी,
जमाना है उथल-पुथल का!

कहिये, खैरियत है? बहुत दिन बाद आये।
मुसीबत पीछे है, पहले आप आये।

ऊँची या नीची दीवारें सब टूटेंगी,
मन की विहङ्गिनियाँ पिंजरों से छूटेंगी,
जल्दी ही दिन वे भी आने ही वाले हैं,
अभी जो लुटती थीं, सुख-धन वे लूटेंगी।

लोभ मिला है, शोक मिला है, भोगी को निर्मोक मिला है,
एक बार करके अनियन्त्रित, कब जन-मन को रोक मिला है?

भ्रमर-से रहे कामना के कमल पर,
न मधु पा सके औ' नहीं मुक्ति-अवसर।

जमाना कहाँ तक निभाता रहा है, सुना है सभी ने, सुनाता रहा है,
किसी को बनाया, किसीको बिगाड़ा, बिगड़ता रहा है, बनाता रहा है।

नहीं सुन सके हैं, नहीं कह सके हैं, समय के सरित् में नहीं बह सके हैं,
रहेंगे हृदय में, दहेंगे निरन्तर, बिना दामिनी के न घन रह सके हैं।

जान गये, जान गये, क्षुद्र औ' महान् गये,
कोई अँधियारी में, कोई बिहान गये।

कहिये, वे रूठें मत, पता नहीं कल क्या हो,
रोज हैं नये सवाल, पता नहीं हल क्या हो!

बीते जीवन-यामिनी, छिपे न घन में दामिनी,
करती है उत्पात क्यों, क्षुद्र कामना-कामिनी?

मेरा नश्वर गात, जल में ज्यों जलजात,
राग-चन्द्रिका आयी, मुक्ति न मन ने पायी,
अन्धकार-सा द्वेष, छलता रहा विशेष,
हो व्यतीत यह रात, जीवन हो अवदात।

अमल हो तुम, कमल हो तुम,
न जीवन हो, न जल हो तुम।

तुम्हारे चरणों का आलोक,
हृदय की पंखुरियों के साथ,
नाचने लगता रज में लीन,
और छुट जाते हैं यों हाथ।

मौत सिखलाती मनुज को प्यार है,
'नित्य बढ़ना' जिन्दगी का स्वर अमर,
मेल से मेला बना संसार में,
यहीं है विद्वेष-कृत शोणित-समर।

नियति के दृग-कोर (नभ के छोर),
क्यों न जाने—अमित अम्बु विभोर।
पल, पलक उठती, ढुलकता नीर,
क्या यही नीहार-हार अधीर?

पितः! तुम्हारे आदेशों का पालन करके चल न रहा हूँ,
आशीर्वाद-सुमन शिर डाले, उन्हें पदों से कुचल रहा हूँ।

दुनिया

दुनिया एक इमारत-जैसी !
कैसी ?
जिसकी कोई ईंट—पकी
तो कोई कच्ची .
अधकच्ची भी कोई ,
बात है—
यह भी सच्ची ,
सब साबुत ही नहीं ,
बहुत-से अद्धे ,
और नाम को आधे, सिर्फ तिहाई ,
रोड़े ही कुछ !
ईंटे, अद्धे-रोड़े बनकर
कूटे जाकर
नींव जमाते ,
जिस पर अच्छी और बुरी मिट्टी के गारे ,
जोड़-जोड़ कर उन्हें खड़ी कर रहे इमारत ,
जिसका सारा भद्दापन है मुँदा हुआ त्यों ,
जैसे चमड़े के नीचे मल-मूत्र-नालियाँ !

इन चिकनी-सुग्घर-चमकीली-दीवारों पर
नाम अनेक उभरते, धुँधले होकर मिटते !
इससे एकाकार देह से हट कर
देखो बुद्धिचक्षु से, बुधवर !
मोहक लगता दीवारों का बाह्य पलस्तर,
इसे कुरेदोगे ? देखोगे अन्दर ?
मत करना यह !
कलई की झिल्ली फटते ही—
कुलबुल कुलबुल करने वाले
कीड़े आ जायेंगे बाहर !

१६ फरवरी, '५५ ई०]

आत्म-निर्देश

जिसने जितना कम खाया,
वह जग को उतना भाया।
नहीं किया संग्रह धन का,
बना वही राजा मन का।
वसुधा सुधा बहाती है,
गीत सुजन के गाती है।
करते हैं हिय-खग कलरव,
वह पुराण भी है अभिनव।
जीवन बहुत पुराना है,
फिर भी क्या उकताना है?

नयी समस्यायें आतीं,
नये जमाने को लातीं।
सबको जीवन पाना है,
अतः नयापन लाना है।

पर सोचो क्या नया यहाँ?
जो आया वह गया कहाँ?
इन प्रश्नों के क्या उत्तर?
क्या घटकर औ' क्या बढ़कर?

सच्चित् है आनन्द नहीं
निश्चय हम स्वच्छन्द नहीं।
नियमों में बँध कर चलिये,
विषयानल में क्यों जलिये?
हृदय हर्ष से भरना है,
सुख से जीना-मरना है।
व्यर्थ कहीं क्या करना है?
किससे क्यों कुछ डरना है?
त्यागो मोह तथा माया,
नर हो आत्मा की छाया।

१६ जनवरी, '५६ ई०]

'नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्'

आम और इमली ज्यों
भिन्न मुनियों के मत ?
अथवा मिठास जैसे
गन्ने के रस में, या—
गुड़ में, या शक्कर में,
गाजी औ' गाजर में,
मूलों में, फूलों में,
और बहु रूपों के फलों में अनेक होकर समायी है,
वैसे ही वे भी हैं एकमेव शत-शत ?
कौन भला उत्तर दे,
भेद यहाँ भी भर दे—
कोई साधारण जन,
रोक नहीं सकता मैं हो कर साधारण ही,
अतएव चुप रहना,
यह तो है ठीक नहीं,
पकड़े न जायँ कहीं,
प्रश्न में ही उत्तर हो,
उसके हैं भाग दो,
और जाने दीजिये,
एक चुन लीजिये।

३ फरवरी, '५४ ई०]

आतङ्क-मोचन

बोलो मत, बोलो मत,
बन्द द्वार खोलो मत,
साँस चुप साधे रहो
हिलो और डोलो मत।
आसमान काला है,
महानाश हाला है,
कायरता जीती है,
तब भी उजाला है।
दूर— बहुत दूर वहाँ,
शूर बढ़े आ रहे,
गर्जन का वर्जन है
सिंह चढ़े आ रहे।

"ठहरो," वे कहते हैं,—
"किसको डराते हो?
देखेंगे, देखेंगे—
कहाँ किधर जाते हो!"
(जीवन फिर जाग उठा, क्रुद्ध ज्यों नाग उठा।
द्वार सब खुल गये, मलिन मुख धुल गये।)

२० नवम्बर, '२६ ई०]

हमारी फौज के सरदार वे हैं,
हमारे हाथ की तलवार वे हैं,
नहीं जो सर झुकाते हैं किसी भी लोभ के कारण,
चढ़ा है शाण के ही साथ, जिनकी धार पर प्रिय प्रण!
अरे! तुम क्या हमें नीचा दिखाओगे, इधर देखो,
मरण से ही भरेंगे, वे हमारे शत्रुओं के व्रण!
तुम्हें ललकारते हैं हम,
सहोगे वार क्या है दम!
न देखो सङ्ग या साथी,
खड़े हम सामने देखो,
न सोचा क्यों कभी पहले, निभेगा रुद्र से क्यों रण!
विमल हिम विन्दु जैसे रश्मि से, ये चमचमाती हैं,
झलक से ही तुम्हारे भी कलेजे जो कँपाती हैं,
उन्हें तुम देख कर ही जा नहीं सकते,—
सुलाने के लिये भू-सेज पर तुमको बुलाती हैं!
कहेंगे मूर्ख, तुमने वीर-गति पायी,
नहीं वे जानते होंगे—
विपक्षी के हृदय के रक्त में ही ये नहाती हैं!

१७ जून, '२४ ई०]

ज्वार-भाटा

सोचता हूँ किस तरह आगे बढ़ूँ, शाम का रवि बन न प्रातः ही ढलूँ।
विवश, होता हूँ उदास विचार कर-जीत कैसे पा सकूँगा हारकर?
हार मेरे कण्ठ का शृङ्गार हो, यदि सदाशा का हृदय में ज्वार हो।
कौन कहताहै कि मैं अब रुक गया, काल की नीरस भँवरमें लुकगया।
मैं चलूँगा लहर-सा सर-वक्ष में, जानता हूँ मास के दो पक्ष हैं।
कृष्ण है तो शुक्ल उसके बाद ही, जो बना, वह हो गया बरबाद भी।
नहीं आकर्षक किसी का रूप हूँ, भूमि का प्रिय भावना का भूप हूँ।
मैं वही हूँ तुम जिसे हो चाहते, दो अलग राहो अकेली राह के।
आज हो तुम, कल नहीं होगे मगर, मैं रहूँगा और यह होगी डगर,
दूसरा मिल जायगा साथी मुझे, हृदय-धन! पर भूल जाऊँगा तुझे।

नवम्बर, '५५ ई०]

गिलहरी

सुघर गिलहरी,
तरु-तनु पर जीवन की लहरी।
बहुत दिनों से देख रहा हूँ,
गिलहरियों के दल आँगन में—
चुन-चुन कर भक्षणरत अक्सर,
भले बहुत लगते दृग-सुख-कर।

दौड़-दौड़ कर आतीं, जातीं,
लड़तीं और झगड़ती भी हैं,
भगा-भगा कर और भाग कर—
करती हैं कल-कलह परस्पर।
चढ़ जाती हैं चारदिवारी-नीम-पकड़िया पर चट डर कर।

चावल खातीं धान फोड़ कर,
कभी-कभी घर के भी अन्दर—
घूम-घाम, आ जातीं बाहर।

इधर-उधर तार-स्वर गायन
करती हैं ये कर्ण-कुहर भर।

बाल्य-काल की समझ और सुधि
आती है, सुख दे जाती है—
मेरे ही हित एक गिलहरी
मीठे गूलर टपकाती है,
आकर वह या बहन उसी की
आज प्रेम-पय भर जाती है।

३० जनवरी, '२६ ई०]

घड़ी के शब्द

सूचना देते घड़ी के शब्द प्रतिपल,
मची है संसार में अविराम हलचल।
जो नहीं है समझता यह, है अभागा,
समझ लेने पर समझ ले भाग्य जागा।
घड़ी के ये शब्द त्यों ही साँस मेरी,
अज्ञ! घिरती मृत्यु तव आती अँधेरी।
डूबते आकाश में ये शब्द जैसे,
बीत जाते हैं सहस्रों अब्द वैसे।
खो रहे ये स्वयं, खोने में न खूबी,
कह रही है घड़ी, "मैं सहचरी हूँगी—
उस मनुज को, जो हमारी भाँति क्षण-क्षण—
कर्म के प्रारम्भ उपसंहार का प्रण—
किये है। मैं उसी का गुणगान प्रतिदिन—
कर रही हूँ, अज्ञ-से ये निमिष मिन-गिन"।

११ अप्रैल, '२४ ई०]

उद्देश्य के प्रति

तुझ पर हो सर्वस्व निछावर,
ओ नश्वर के प्रण अविनश्वर!
ध्यान रहे तेरा निशि वासर,
आ, बस कर निर्मल कर अन्तर।
अखिल विश्व कर वरण, विभव भर,
उमड़ें सुख जल से सरिता-सर।
नभ-मण्डल में विहगों के स्वर,
उषःकाल, हर्षित सचराचर।
हिला झुला कर पत्र-कुसुम-दल,
सुरभित पवन प्रथित हो प्रतिपल।
कोमल-किरण क्रान्तिकारी कर—
बन वासव के वज्रायुध वर—
वृत्रासुर-माया-सागर पर
छा जायें जैसे-प्रलयानल,
पी जायें प्राणों का क्षर-जल।
रह, शरीर में बन ऐसा बल।
नयन-तारकों में बस अचपल,
दिखलायी देता जा अविकल।

६ जून, '५४ ई०]

सुकरात

सच्चा था सुकरात,
सच थी उसकी बात,
अमर वह हो गया!

व्यर्थ झूठ का गरल,
शुष्क रहा या तरल,
स्वयं ही खो गया!

५ फरवरी, '५४ ई०]

'मातः !'

मैं तेरे तन का ही भाग,
मुझ में तेरी जीवन-आग।

अग्नि-पुञ्ज तू, मैं लघु चिनगी—
तेरे हाथों पृथक् हो जगी।
तेरा त्याग बना आहुति,
अगणित होंगी उसकी स्मृति।
रँगता मुझको तेरा राग,
मैं तेरे तन का ही भाग।

स्नेह-सुधा से मुझे बढ़ाया,
सेवा-हेतु बनी तू छाया।
दूर-स्थित मैं, मेरा चित्र—
दृग-जल में कर रही पवित्र—
सुधि-सुमनों की माला ताग।
मैं तेरे तन का ही भाग।

क्या जीवन भर भूल सकेगी ?
अन्त-समय में शूल बनेगी—
सुमन-सदृश नित-नव जो ममता,
(कौन करेगा उसकी समता ?)

सोना कभी न, मातः ! जाग।
मैं तेरे तन का ही भाग।

नहीं करूँगा तेरी सेवा,
पाऊँगा कैसे सुख मेवा ?
तूने मुझको पाला-पोसा,
फिर भी मैंने तुझको कोसा,

कर पर दिखा क्रूरता-दाग,
फिर भी तेरे तन का भाग।

मैं अबोध, तू तो सुबोध है,
कहीं नहीं मुझसे विरोध है।
तेरी स्नेह-सुधा अक्षय है
कब मुझको अभाव का भय है ?

तुझमें अवसित विश्व-विराग,
मैं तेरे तन का ही भाग।

५ मार्च, '५५ ई०]

भ्रम

हिय पर सजा लिया है तुमने कुविचारों का हार,
होगा बस दुर्गन्ध-लाभ ही, नहीं सुरभि या सार।
जो प्रसून पावन मधु-पूरित, उनसे किया न प्यार,
किन कीटों से भरी कण्टकित डालों का अभिसार?
सही न जाती, बचना कैसे, निठुर मार की मार!
भ्रम है उनको, कहते हैं जो इसको सुखद बहार।

२६ जून, '५४ ई०]

जाग्रत, निबोधत

जान-जान कर भी रहा, तू सदैव अनजान.
अतः नहीं अज्ञान की—रजनी का अवसान।

धैर्य-पराक्रम भूल कर, हुआ आज मुहताज,
वृक-शृगाल निश्चिन्त हैं, जाग, जाग, मृगराज!

विमल बुद्धि बाती बने, औ' श्रद्धा का स्नेह,
देह-दीप में ज्ञान-लौ, करे प्रकाशित गेह।

मन मोहन लोचन सुघर, मुख छवि विमल अनूप,
मिट्टी में मिल जायगा, यह लोकोत्तर रूप।

घृणा-घोष का अन्त है, प्रेम-गान का अन्त,
अन्तवान् नर-लोक में, केवल काल अनन्त।

अंशोपासक हो गया, है कितना अज्ञान,
पूरा पड़ने के लिए, फिर पूरे को जान।

रूप-राशि, धन-राशि औ', शासन का अधिकार,
जग में लोभ हजार हैं, दुर्लभ है सुविचार।

है समस्त संसार में, मार काट की धूम,
देख काल की क्रूरता, रे! मत मद में झूम।

पल-पल पीड़ा बढ़ रही, करतो विकल अधीर,
फिर भी है उर-धन बना, यह तृष्णा का तीर।

सदा रात-दिन हो रहा, तेज-तिमिर-संग्राम,
जीवन-जागृति के लिए, बढ़ना है अविराम।

विश्व-वृक्ष पर पत्र-तनु, उस पर जीवन-बूँद,
समय-वात से हिल रही, रे आँखें मत मूँद।

छोटा-सा जीवन मिला, और हजारों काम,
बुरे करोगे किस लिए, अच्छे पड़े तमाम।

निश्चित हैं जीवन-मरण, निश्चित योग-वियोग,
नहीं छोड़ता क्यों हमें, यह लड़ने का रोग?

तर न रही जीवन-तरी, पवन नहीं अनुकूल,
कर्णधार! आधार अब, प्रभु-करुणा का कूल।

ऊपर रस्सी कट रही, अभय तुम रहे झूल,
धराशयन के बाद क्या, मालुम होती भूल?

जिनको फलना-फूलना, उनके लिए वसन्त,
ठूँठ हरा होगा नहीं, हो पतझर का अन्त।

दे दो, दे दो पत्र-धन, माँग रहा ऋतुराज,
चाह रहे हो पहनना, यदि फूलों का ताज।

नाच रही विहगावली, गूँज रहा गुण-गान,
विमल-वात बहने लगा, हुआ रजनि-अवसान।

जागो, जागो, विषय-धन! विष-निद्रा को त्याग,
उठ करके धारण करो, उषा तमोहर आग।

सुख-सामग्री से भरा, जीवन का आगार,
किन्तु मरण के भी लिए, क्यों न हुआ तैयार?

लुटा-लुटा कर प्रेम-धन, लूट, सभी को लूट,
चतुर लुटेरे चाहते, कब लुटने से छूट।

निश्चय एक स्वभाव के, हैं पावक औ' प्रेम,
किये बिना निर्मल नहीं, छोड़ेंगे हिय-हेम।

६ जून, '५५ ई०]

सदुद्देश्य-प्रिय

कितना बल है, क्या सम्बल है ?

झरना चञ्चल, शिखर अचल है,
दोनो की ही आवश्यकता, एक न रुकता, अपर न झुकता।
मानवता तो और प्रबल है!
जो कहता है, 'राह नहीं है', उसमें बस उत्साह नहीं है।
हर सवाल का निश्चय हल है!
रुकने वाले उठ न सकेंगे, इसीलिए जो नहीं रुकेंगे,
उनका जीवन सरल सफल है!
कुटिल-मार्ग पर चलने वाले, पाते हैं बहु कष्ट कसाले,
उनको 'हा-हलचल' प्रतिपल है।
सदुद्देश्य ही जिनको प्यारा, उनसे है हर सङ्कट हारा,
निर्मलता उनसे निर्मल है।

२१ नवम्बर, '५५ ई०]